॥ ॐ ॥

गीता सूर्य प्रकाश

पंच–प्रणाम

सर्व शक्तिमान व्यापक, अज अमर नित सर्वगत ।
विश्वपति सच्चिदानन्द को प्रथम नम्र प्रणाम हो ॥१॥
परम नर अवतार धर, कल्याण करता जगत का ।
धर्म रक्षक पाप नाशक को, द्वितीय प्रणाम हो ॥२॥
ज्ञानि, ध्यानि, योगि, यति, सति, भक्त, साधू, ऋषि, मुनि ।
श्रेष्ठ उत्तम महापुरुषों को विनम्र प्रणाम हो ॥३॥
आत्म गुरु अरु धर्म, गुरु विद्या कलादि गुरु सभी ।
ज्ञान जिनसे मिला तिनको, बार बार प्रणाम हो ॥४॥
अपने अर्थों को हमारे हेतु अर्पण कर दिया ।
मातृ-पितृ वर्ग को "सूरज" प्रणाम प्रणाम हो ॥५॥

पहला अध्याय

धृतराष्ट्र बोले ।

कुरुक्षेत्र में एकत्रित हो, युद्ध की इच्छा चित धरत भये ।
मेरे अरु पांडव के वंशज, हे संजय क्या कुछ करत भये ॥ १ ॥

संजय बोले ।

जो व्यूह रूप से खड़ी हुई, सो देख पांडवन की सैना ।
द्रोणाचारज के निकट जाय, तब दुर्योधन बोले बैना ॥ २ ॥
आचारज देखो पंडवन की, भारी सैना है, पड़ी हुई ।
तब शिष्य द्रुपदसुत रणविद से, सब व्यूह रूप में खड़ी हुई ॥ ३ ॥
रण भूमी में हैं शूर बड़े, भीम अर्जुन समान धनुर्धारी ।
युयुधान द्रुपद सम महारथी, अरु विराट सम हैं बलकारी ॥ ४ ॥
है धृष्टकेतु अरु चेकितान, काशी राजा सम बलधारी ।

पुरुजित अरु कुन्तीभोज शैब्य, पुरुषों में श्रेष्ठ बड़े भारी॥ ५ ॥
हैं शूर युधामन्यू भारी, अरु उत्तमोज से बलकारी।
सौभद्रा सुत द्रौपदी पुत्र सारे हैं महारथी भारी॥ ६ ॥
तिनको जानो जो शूर बड़े, अगुवा हम में से पाता हूँ।
जो नायक मेरी सेना के तिन सबको तुम्हें सुनाता हूँ॥ ७ ॥
हैं कृपाचार्य सम समरजीत भीषम अरु आप करण जैसे।
अश्वत्थामा योधा विकर्ण, अरु सोमदत्त सुत हैं वैसे॥ ८ ॥
हैं और बहुत अगणित योधा, जीवन मम हित दे डारे हैं।
हैं युद्ध विशारद शस्त्रों को बहु भांति चलाने वाले हैं॥ ९ ॥
भीषम बल से रक्षित अपनी सैना असमर्थ अरु अगणित है
उनकी सेना है थोड़ी सी पर सबल भीम से रक्षित है॥ १० ॥
हे! सब बलकारी योधाओं अपने भागों में डटे रहो।
भीषम बलकारी योधा की रक्षा करने पर अटे रहो॥ ११ ॥
कुरुबृद्ध पितामह परतापी तब संख श्वास से भरत भया।
उत्साहित करने राजा को तब सिंह नाद को करत भया॥ १२ ॥
नरसिंहे, संख मृदंग, ढोल जब लगे बाजने नक्कारे।
सब एक साथ ही बजने से नभ होने लगे शोर भारे॥ १३ ॥
तब सफेद घोड़े जुते हुवे बड़ रथ में चढ़ कर आत भये।
माधव अरु पांडव सुत दोनों, संखों को दिव्य बजात भये॥ १४ ॥
श्रीकृष्ण बजावत पांचजन्य अरु देवदत्त को कुन्ती सुत।
पौंडर को पूरत करत भया तब भीम भयंकर करमोयुत॥ १५ ॥
कुन्ती सुत राजा धर्मराज तब अंन्त विजय नामक लीना।
सूघोष और मणिपुष्पक को सहदेव नकुल पूरित कीना॥ १६ ॥
धृष्टद्यूमन राजा विराट महारथी शिखण्डी जो भारा।
उत्तम धनुधारी काशिराज सात्यकी कभी जो नहीं हारा॥ १७ ॥
तब द्रुपद और द्रौपदी पुत्र हे राजन सुनिये पृथ्वीपत।

सौभद्रा सुत सब पृथक पृथक निज संखोंको कीने पूरत ॥ १८ ॥
धृतराष्ट्र के पख वालों के सो शब्द हृदों को फारत हैं ।
पृथ्वी पर अरु नभ मण्डल में चहुँदिश घमसान गुंजारत हैं॥ १९ ॥
व्युह बांधे हुए देख सैना धृतराष्ट्र के जो गैल लगी ।
तत्पर लड़ने को खड़े देख तब रथ में वानर ध्वजा टगी ॥ २० ॥
सो अर्जुन तब श्रीकृष्ण प्रती हे भूपत यूँ बोले बैना ।
भगवन रथ बीच खड़ा कीजे जहँ खड़ी हुई दोनों सैना ॥ २१ ॥
युध की इच्छा से खड़े हुवे तिनको देखूँ जिन लड़ना है ।
किस किसने मेरे संग समर इस रण भूमि में करना है ॥ २२ ॥
मैं देखूँ लड़ने वालों को जो यहां इकट्ठे थाये हैं ।
धृतराष्ट्र सुत दुर्बुद्धि हिंत जो युद्ध लड़न को आये हैं ॥ २३ ॥

संजय बोले ।

सुन बचन कृष्ण ने अर्जुन के राजन थोड़ा रथ बढा दिया ।
दोनों सैनाओं के बीच में सो उत्तम रथ ला खड़ा किया ॥ २४ ॥
तब भीष्म द्रोण अरु राजों के सन्मुख लेजा यूँ बचन कहे ।
अर्जुन देखो सब कुरुवन को जो युद्ध हेतु एकत्र भये ॥ २५ ॥
सो अर्जुन देखत भया तहां ठाड़े आचारज पित्रों को ।
दादों मामों सुत पोतों को भ्राताओं को निज मित्रों को ॥ २६ ॥
देखा सुहृद अरु सुसरों को प्रति सेनाओं में अड़े हुवे ।
सो देखे कुन्ती सुत अर्जुन, सारे बन्धूजन खड़े हुवे ॥ २७ ॥
उन रण की इच्छावालों को, लख कर जो थे सब खड़े भये ।
आतुर हो कृपा दयावश हो अर्जुन उदास हो बचन कहे ॥ २८ ॥

अर्जुन बोले ।

छिटके जाते हैं अंग मेरे अरु मुख बस सूखा जाता है ।
कम्पित शरीर हो रहा सभी, रोमांच बदन में आता है ॥ २९ ॥
जल रही त्वचा सब देही की, गांडीव हाथ से छिटकावे ।

मैं खड़ा नहीं रह सकता हूँ मानो मेरा मन चकरावे ॥ ३० ॥
उलटे विप्रीत लखावत हैं केशव निमित्त लच्चण सारे ।
कुछ भला नहीं दिखलावत हैं भ्राताजन को रण में मारे ॥ ३१ ॥
मैं जीत राज अरु सुखों को, नहिं चाहत हूँ संकट मोचन ।
हे कृष्ण ! राज अरु भोगों से, क्या जीवन से भी परयोजन ॥ ३२ ॥
जिनके खातर यह राज भोग, अरु सुख सब हमको प्यारे हैं।
सो तो धन प्राणों को तजकर, इस रंग भूमि में ठाड़े हैं ॥ ३३ ॥
आचारज पित्री अरु सुत गण, दादे पूज भीष्म जी जैसे ।
मामे सुसरे पोते साले ठाढ़े हैं सब समधी तैसे ॥ ३४ ॥
यह मारे मुझको तो भी मैं इनको मारन नहिं चाहता हूँ ।
जो मिले त्रिलोकीराज यदपि, तब भू क्यां राज सुनाता हूँ ॥ ३५ ॥
मारे से क्या सुख हर्ष होय, धृतराष्ट्र के सुत भाइयों को ।
दीखत में पाप लगे भारी, जो मारें इन अतताइयों को ॥ ३६ ॥
यूँ धृतराष्ट्र सुत भाइयों को मारन के हम कुछ योग नहीं ।
कारण स्वजनों को मारे से, हम पावेंगे सुख भोग नहीं ॥ ३७ ॥
यह मूरख जन नहिं देखत हैं, क्या दोष लगे कुछ घातक को ।
कामान्ध लोभवश भ्रष्टचित्त, भूले मित्तर द्रोह पातक को ॥ ३८ ॥
भगवन् भला हम देखत हैं जब कुल हानि संतापों को ।
क्यूँ विचार फिर नहिं आवेगा, तजना चहिये इन पापोंको ॥ ३९ ॥
कुल नष्ट भ्रष्ट हो जाने से, कुल धर्म नाश हो जाते हैं ।
कुल धर्म सनातन नाश होय, तो अधरम आन दबाते हैं ॥ ४० ॥
तब अधर्म व्यापत होने से, दूषित हों कुल नारी भगवन् ।
तिन के दुष्टा होने से हो, सन्तान वर्णशंकर उतपन् ॥ ४१ ॥
सो शंकर कुल कुलघातिन को, नरकों में भ्रमण कराते हैं ।
कारण पिंडोदक नष्ट होंय, तिन के पित्री गिर जाते हैं ॥ ४२ ॥
यह दोष कृष्ण कुल घातिन के, जो वर्णशंक्र उपजाते हैं ।

तिस लिये सनातन जातिधर्म, कुल धर्म नाश हो जाते हैं ॥ ४३ ॥
हे मधुसूदन उन पुरुषों का जिनके कुल धर्म विनाश हुवे ।
यह पढा सुना है निश्चय ही, तिनके नरकों में वास हुवे ॥ ४४ ॥
सुख राज भोग के लालच में, दुष्कर्म करन को खड़े हुवे ।
हा ! खेद मारने को अपने बन्धूजन के हैं अड़े हुवे ॥ ४५ ॥
धृतराष्ट्र सुत आयुध धारी, मुझ शस्त्र हीन को जो मारें ।
तिस से मेरा हो अधिक भला, हम बदला लेना नहिं धारें ॥ ४६ ॥

संजय बोले ।

अस कह अर्जुन रण भूमि में, रथ में जाकर के बैठ गया ।
विव्हल,व्याकुल,शोकातुर हो,निज धनुषबाण सब छोड़दिया॥ ४७॥
वेदान्तसार भगवद्गीता, सब जाति देश में व्याप्त हुई ।
सूरज विर्चित अर्जुन विषाद, पहली अध्याय समाप्त हुई ॥ ४८ ॥

हरि ॐ तत्सत

दूसरा अध्याय

संजय बोले ।

लख अर्जुन की यूँ कायरता, नयनन विषाद जल भरे भये ।
आतुर, क्लेशित अरु उदास को, मधुसूदन तब यह बचन कहे॥१॥

श्रीभगवान् ने कहा ।

अर्जुन इस विषम समय में यह, कायरता कैसे व्याप्त हुई ।
यह स्वर्ग विरोधक धर्म हीण, अपयश कारक कस प्राप्त हुई॥ २ ॥
कायरता तेरे योग नहीं, हे अर्जुन निरुत्साह न हो ।
तज तुच्छ हृदय की दुर्बलता शत्रुञ्जय उठ कर युद्ध करो ॥ ३ ॥

अर्जुन ने कहा ।

हे कृष्ण भला द्रोणाचारज, कैसे भीषम को मारूँ मैं ।
अपने पूज्यों के सन्मुख हो, किस भांति शस्त्र तन धारूँ मैं ॥ ४ ॥
ना मार गुरु जन पूज्यों को, भिक्षा भोजन खाना बेहतर ।
भोगूँ भोगों को रुधिर युक्त, शुभ चिन्तक पूज्योंको वधकर॥ ५ ॥
हम जीतेंगे या वह जीतें, इसका भी भेद नहीं पाते ।
धृतराष्ट्र सुत सन्मुख जिनको, वधकर जीना हम नहिं चाहते॥६॥
कायर विव्हल मनमें व्याकुल-विचलित हो पूछूँ कष्ट हरण ।
जो भली बात सूझे तुमको, दीजे शिक्षा हूँ शिष्य शरण ॥ ७ ॥
यह राज मिले या इंद्रासन, दीखत नहिं मुझको सुखकारी ।
हा ! इंद्रिन शोषक महाशोक, कोई नहिं मेरा दुख हारी ॥ ८ ॥

संजय ने कहा ।

बैरिन नाशक कुन्ति सुत ने, श्रीकृष्ण प्रती यह बचन कहे ।
मैं युद्ध कदापि नहिं करि हूं, रथ में जा बैठे मौन भये ॥ ९ ॥
हे भारत जो सैनाओं में, था उदासीन सा पड़ा भया ।
तब हृषीकेश नारायण ने, हँसते अर्जुन से वचन कहा ॥१०॥

श्री भगवान् ने कहा ।

नहिं शोच योग तेहि शोच करे, पण्डित जिमि बात बनाता है
बीतों का अरु बे बीतों का, ज्ञानी मन शोच न लाता है ॥११॥
अर्जुन हम तुम अरु यह राजा, क्या थे नहिं नहिं होंगे जानो ।
पहिले भी थे अब हैं होंगे, आगे भी यह निश्चय मानो ॥१२॥
जिमि जीव बाल अरु तरुण वृद्ध, देही पाकरके होता है ।
देहान्तर होना जान तिमि, ज्ञानी का मन नहिं मोहता है ॥१३॥
संयोग विषय अरु इन्द्रिन के- सुख दुःख शीतोषण उपजावें
तुम सहन करो अर्जुन इनको, यह अस्थिर अनित्य कहलावें॥१४॥

पुरुषों में श्रेष्ठ सुनो अर्जुन- यह जिन्हें न दुखित बनाते हैं ।
सुख दुख हैं एक समां जिनके, सो धीर अमर पद पाते हैं ॥१५॥
जो असत्य है सो सत्य न हो, सत को असत्य नहिं माना है ।
दोनों का भेद भली भांति, तत्वज्ञों ने यूँ जाना है ॥१६॥
जिस करके सब जग व्याप रहा, अर्जुन सो अविनासी जानों ।
नहिं कोई कर सकता विनाश, अविनासी को ऐसा मानो ॥१७॥
है आतम नित्य विनाश हीन, है नाशवान देही सारी ।
अर्जुन उठ करके युद्ध करो, देही का शोक बृथा भारी ॥१८॥
जो मारन वाला समझत है, या मरनहार इसको माने ।
ना मरे किसी को यह मारे, दोनों अज्ञानी नहिं जाने ॥१९॥
ना जनमत है ना मरे कभी; ना जनमा ना जनमे आगे ।
है नित्य पुरातन जन्म रहित, ना मरे कभी देही त्यागे ॥२०॥
जिसको यह अजन्म अविनाशी, अविकारी नित्य लखाता है ।
वह पुरुष भला बतला अर्जुन, किसको मारे मरवाता है ॥२१॥
तज कर मैले कपड़े प्राणी, तन नवीन धारण करता है ।
यह जीव त्याग जीरण देही, तैसे नवीन देह धरता है ॥२२॥
नहिं काटत शस्त्र इसे अर्जुन अगनी भी नहीं जलाता है ।
वायू शोषण नहिं करता है, अरु जल नहिं इसे गलाता है ॥२३॥
काटे न कटे जाले न जले, यह गले सुखावे नहीं कदा ।
सबमें व्यापक इक रस थिर है अरु नित्य सनातन अचल सदा ॥२४॥
इन्द्रिय मन से नहिं जान पड़े, अविकारी अज्ञेय जानो तुम ।
इसको निश्चय ऐसा लखकर, कुछ शोक न मनमें मानो तुम ॥२५॥
अथवा जो तुम ऐसा मानो, इसका है नित जामन मरना ।
कुन्ती सुत जरा विचार करो, फिरभी कुछ शोक नहीं करना ॥२६॥
जो जनमा है निश्चय मरिहै, पुनि मृतक अवश्य जनम पावे ।
इन बे इलाज बातों के लिये, अर्जुन इतना मत घबरावे ॥२७॥

जो अलख जन्म से था पहले. मरने, के बाद न दिख पावे ।
जो जान पड़े बिच ही बिच में तेहि शोक करन को बतलावे॥२८॥
इसको अचरज युत देखत हैं, कइ अचरज सहित बखानत हैं
सुनकर इसको विस्मय करते, कइ पढ़ सुन भी नहिं जानत हैं॥२९
देह स्वामी नित्य अवध्य कहा, सब देहों में जो व्याप रहा ।
तिस कारण प्राणिन भूतों के, कुन्ती सुत शोक कलाप वृथा ॥३०॥
अपना निज धर्म विचारे, तो भी शोक मनाना कर्म नहीं ।
तू क्षत्री है सो क्षत्रिन को, युध से बढ़ कर कुछ धर्म नहीं ॥३१॥
अपनी इच्छा से द्वार खुला, नर भागवान ही पाते हैं ।
जो रण भूमी में मरते हैं, बेरोक स्वर्ग को जाते हैं ॥३२॥
इस धर्म युद्ध को जो न करे, तो भारी पापी होवेगा ।
जो मुँह मोड़ेगा लड़ने से, निज धर्म कीरती खोवेगा ॥३३॥
जग में सब हँसी उड़ावेंगे, करि हैं निन्दा नित नर नारी ।
नामी पुरुषों की अपकीरत, मरने से भी दुख दे भारी ॥३४॥
भय से रण खेत तजा, अर्जुन, भीरू डरपोक कहावेगा ।
तुमको मानत योधा उनकी, नजरों में तू गिर जायेगा ॥३५॥
अनकहनी बात सुनावेंगे, तेरे वैरी अर्जुन बतला ।
करिहैं निन्दा तेरे बलकी, बढ़कर उससे दुख कौन भला ॥३६॥
जीतोगे तो वसुधा भोगो, पावोगे स्वर्ग रणमांहि मरो ।
है जीत तेरी दोनों भांती, सो अर्जुन उठकर युद्ध करो ॥३७॥
सुख दुख हानी अरु लाभ यदी, जय हार बराबर जोवेगा ।
उठलड़ अर्जुन यूँ लड़ने से, कुछ पाप तुझे नहिं होवेगा ॥३८॥
अब तक तुमको हम सांख्य कहा, अब बुद्धि योग बतावेंगे ।
तिस कर्म योग में युक्त हुवे, सब कर्म बंध छुट जावेंगे ॥३९॥
ना कर्म सिलसिला ही विगड़े, फल उसका दुखित न करता है ।
इस धर्म अनुसार करम करना, भय बाधायें सब हरता है ॥४०॥

निश्चय कारक आतम बुद्धी, है एक कुरु नन्दन मानो।
जिनके निश्चय कछु नहिं मनमें, तिनकी अगणित बुद्धि जानो॥४१॥
वेदों में कर्म फलों को ही, मेरी वाणी बतलाते हैं।
अविवेकी वेद वाद में रत, बस और न कछू सुनाते हैं॥४२॥
सो स्वर्गादिक भोगों के लिये, यज्ञादिक कर्म कमाते हैं।
सुख भोग हेतु कामी भोगी, यह जनम करम फलपाते हैं॥४३॥
ऐश्वर्य भोग में जो रत है, जिनके चित फल को चाहते हैं।
सो निश्चय कारक बुद्धी में, तिनके मन स्थिती न पाते हैं॥४४॥
वेदों में वर्णित त्रिगुण विषय, अर्जुन त्रिगुणों से हो त्यागी।
निर्द्वंदव हो शुद्ध सतोगुणी, अरु अलिप्त आतम अनुरागी॥४५॥
नद सरवर आदि से मनुष्य, चाहे जितना जल लेता है।
तैसे ही शास्त्र वेदों में, ब्रह्म का ज्ञाता चित देता है॥४६॥
अधिकार तेरा है करमों में, कुछ फल पाना आधीन नहीं।
मत कर्म फलों का कारण बन, मत हो अकर्म में लीन कहीं॥४७॥
तज संग योगयुत कर्म करो, सिद्धी असिद्धि को एक जान।
हे पृथापुत्र इन दोनों की, समता को ऊंचा योग मान॥४८॥
इस बुद्धि योग से हे अर्जुन, फल करमों को नीचा जानो।
तिससे बुद्धी की शरण गहो, फल की इच्छा को तुच्छ मानो॥४९॥
सब पुण्य करम अरु पाप करम, ज्ञानी दोनों तज जाता है।
अर्जुन साधो यह बुद्धि योग, योगों में कुशल कहाता है॥५०॥
जो पण्डित त्याग करम फल को, इस बुद्धी में लग जाते हैं।
वह जनम मरणकी पाश काट, निश्चय अविचल पद पाते हैं॥५१॥
जब मोह कीच तरकर तेरी, बुद्धि यूँ पार हो जावेगी।
तब सुने सुनन योगों से भी, वैराग्य हिये उपजावेगी॥५२॥
सुन करके अगणित शास्त्र वाक्य, बुद्धी चंचल होगई तेरी।
सो बुद्धि योग में होगा जब, थिर हो यह सुन बानी मेरी॥५३॥

अर्जुन ने कहा ।

थिरता को प्राप्त हुई बुद्धि, भगवन उनके भक्षण हैं क्या ।
किमि बोलत बैठत चलत फिरत उन प्रज्ञों के लक्षण हैं क्या॥५४॥

श्रीकृष्ण ने कहा ।

मन गत सब कामों को तज कर, जो आतम में टिक जाता है ।
आतम सुख का अनुभव करता, सो थिर बुद्धी कहलाता है॥५५॥
जो सुख की चाहना नहिं करता, दुख में भी नहिं घबराता है ।
भय राग क्रोध व्यापे न जिसे; सो नर स्थित प्रज्ञ कहाता है॥५६॥
चाहत अन चाहत भली बुरी, पर हर्ष शोक नहिं लाता है ।
ना राग करे ना द्वेष करे, सो नर थिर बुद्धि कहाता है॥५७॥
जो इन्द्रिन को निज भोगों से, कछुवे की नाईं सकुचावे ।
अर्जुन भोगेच्छा नाश हुई, सो नर थिर बुद्धि कहलावे॥५८॥
हों शिथिल इन्द्रियां भूखे की तदपी इच्छा रह जाती है ।
पर रूप आत्मा दर्शन से, भोगेच्छा सब दब जाती है॥५९॥
इन्द्रियां प्रबल भारी अर्जुन, मन को चञ्चल कर देती हैं ।
ज्ञानी यतनी के मन को भी, बल करके यह हर लेती हैं॥६०॥
इससे जो योगी इन्द्रिन को, वस करके मुझ में तत्पर हैं ।
इन्द्रियां हुईं वश में जिसके, अर्जुन थिर बुद्धि वही नर है॥६१॥
विषियों को ध्याने से इन्द्रिय, भोगों का संग बनाती हैं ।
संग होने से कामेच्छा हो, इच्छायें क्रोध बढ़ाती हैं॥६२॥
पुनि मोह क्रोध से बढ़ता है, मोह से मति भ्रम उपजाता है ।
मति भ्रम से बुद्धी होय नाश, तब प्राण नष्ट हो जाता है॥६३॥
मानुष अपना मन वश करके, जो राग द्वेष नहिं लाता है ।
विषियों का सेवन करता भी, सो परम शान्ति पाता है॥६४॥
तब शान्त भाव चित होने से, दुख अरु व्याधी कट जाती हैं ।
उस शान्त चित्तवाले नर की, बुद्धी झट थिरता पाती है॥६५॥

बिन योग किये बुद्धी न टिके, नहिं योग जहां नहिं भाव तहां।
बिन भाव ध्यान शान्ति नहिं हो, शांति विहीन को सुख कहां॥६६
चञ्चल इन्द्रिन की गैल लगा, मन बुद्धि को ले जाता है।
भोगों विषयों की तरफ़ जिमि, नय्या को पवन घुमाता है॥६७॥
जिसने इन्द्रिन को रोक लिया, अर्जुन सोई नर ज्ञानी है।
मन को विषयों से दमन किया, सो ही थिर बुद्धी प्राणी है॥६८॥
जो निशि है सारे भूतों की तहां जागत है आतम ज्ञानी।
सो रात देखता है ज्ञानी, जिसमें जागत हैं सब प्राणी॥६९॥
नद नालों का जल मिले तदपि, हो शान्त समुद्र न इठलावे।
तिमि इच्छा लय हों योगी में तदपो इच्छुक सुख नहिं पावे॥७०॥
सारी इच्छाओं को तजकर जो निरइच्छित हो जाता है।
अरु अहंकार ममता त्यागे, सो प्राणी शान्ति पाता है॥७१॥
जो ब्रह्म ज्ञान निष्ठा पावे, तिसको कुछ मोह न आता है।
सो अंत समय अस विचार हो, तो मुकती पद को पाता है॥७२॥
वेदान्त सार भगवद्गीता, ज्योती सम सब जग व्याप्त हुई।
सूरज अनुवादित सांख्य योग. दूजी अध्याय समाप्त हुई॥७३॥

हरि ॐ तत्सत्

तीसरा अध्याय

अर्जुन ने कहा।

तुम कर्म योग से ज्ञान योग जो कृष्ण श्रेष्ठ बतलाते हो।
हिन्सा रूपी यह घोर करम, क्यों इसमें मुझे लगाते हो॥ १॥
यों मिली जुली सी बातें कह क्यों मोह में मुझे फसाते हो।
निश्चय जिससे कल्याण होय, सो क्यों नहिं एक बताते हो॥ २॥

श्री भगवान् ने कहा।

इस जग में दो निष्टा अर्जुन, मैंने यह प्रथम सुनाया है।
ज्ञानी को सांख्य कर्मयोगी को, करम योग बतलाया है॥ ३॥

करमों के प्रारम्भ किए बिना, नर निष्कर्मत्व न पाता है ।
अरु करम बिना सन्यास योग, केवल नहिं सिद्धि दाता है ॥ ४ ॥
प्राणी को कभी किसी क्षण भी, बिन करम किए नहीं सरता है ।
सब करम प्रकिरती गुण वश हो, जीवों को करना पड़ती है ॥५॥
जो स्थूल इन्द्रियों को वश कर मन से विषयों को ध्याता है ।
अर्जुन वह मूढ़ दुराचारी, कपटी ढोंगी कहलाता है ॥ ६ ॥
मन सहित दमन कर इन्द्रिन को अर्जुन जो योग सधाता है ।
जो असक्त अलिप्त करम करे, सो त्यागी श्रेष्ठ कहाता है ॥ ७ ॥
कर नियमित कर्म न करने से, करना ही श्रेष्ठ कहाता है ।
बिन कर्म किये से देही का, निर्वाह कठिन हो जाता है ॥ ८ ॥
जग में यज्ञादिक बिन जेते, सब कर्म बन्ध के हेतु सो ।
अर्जुन असंग हो कर्म करो, पर अर्थ कर्म नहिं बन्धन हो॥ ९ ॥
ब्रह्मा ने यज्ञ सहित परजा, सब रच कर तब यह वचन कहे ।
यह यज्ञ तुम्हारी वृद्धी को, अरू मनोकामना सफल करे ॥१०॥
देवों को पूजो भावयुक्त, सो वे तुम पर सन्तुष्ट होय ।
आपस में दोनों पक्षों की वृद्धी यूँ निश दिन पुष्ट होय ॥११॥
यज्ञों से देवों को पूजे, सो इच्छित भोगों को पावे ।
उनके निमित्त कुछ दिये बिना, भोगे सो तस्कर कहलावे ॥१२॥
जो यज्ञ बचा खाते सज्जन, सो पापों से छुट जाते हैं ।
पापी पापों को खाते हैं, जो अपने लिये पकाते हैं ॥१३॥
सब जीव अन्न से होते हैं, अरु अन्न मेघ उपजाते हैं ।
मेघोंकी उत्पत्ति यज्ञों से, यज्ञों को करम बनाते हैं ॥१४॥
सब करम ब्रह्म से उपजत हैं सो अक्षर से उपजाता है ।
सो ब्रह्म सर्व गत नित्य सदा, यज्ञ में तिष्ठित कहलाता है ॥१५॥
इमि प्रभु प्रवर्तित चक्कर के, जो अनुगामी नहिं होते हैं ।
इन्द्रिय भोगों में रत पापी, सो जनम वृथा ही खोते हैं ॥१६॥

जो नित संतुष्ट त्रिपत अरु रत, है अपनी आतम में जिनको
कुछ करना करम जरूर नहीं, खुद मस्त आत्मा में तिनको ॥१७॥
ऐसे ज्ञानी को करने से, ना करने से पुन पाप नहीं ।
थावर अरु जंगम भूतों से, जिसका सम्बन्ध मिलाप नहीं ॥१८॥
कर असंग हो कर्तव्य कर्म, अर्जुन यह योग बताता है ।
जो असक्त होकर करम करे, सो पुरुष परम पद पाता है ॥१९॥
जनकादिक ज्ञानी सिद्धि लही, लौकिक मर्याद करम करके ।
इस लोक भलाई के खातिर, उद्योग करम कर चित धरके ॥२०॥
जो करम प्रतिष्ठित पुरुष करें, साधारण नर सो करते हैं ।
अनुगामी तिन गुणवानों के, युकती प्रमाण सिर धरते हैं ॥२१॥
अर्जुन त्रिलोकि में हमको कुछ, इच्छित कर्तव्य अलभ्य नहीं ।
तो भी करता हूँ करम सदा, कुछ अर्थ लाभ मंतव्य नहीं ॥२२॥
हे अर्जुन हम आलस्य छोड़, जो करम प्रवरत न होवेंगे ।
तिमि हो अनुगामी लोक सभी, निज कर्म धरम को खोवेंगे॥२३॥
जो तजूँ करम हो लोक नष्ट सृष्टी को उलट पुलट पाऊँ ।
शंकर करता नाशक करता, तब मैं दुनियां का कहलाऊँ ॥२४॥
आसक्त विषय अरु भोगों में, जिमि करम करत हैं अज्ञानी ।
तज संग लोक हितके खातिर, तिमि करम करत हैं विज्ञानी ॥२५
आसक्तों करम काण्डियों को, ज्ञानी जन कभी न विचलावे ।
ज्ञानी सचेत हो करम करे, अरु करम उन्हों से करवावे ॥२६॥
गुण करम अनुसार स्वभाविक ही हों करम ज्ञानि यूँ जानत है ।
मूरख अज्ञानी अभिमानी, अपने को करता मानत है ॥२७॥
हे अर्जुन तत्वों का ज्ञाता, गुण करम विभागों को जाने ।
है गुण गुणी का खेल सभी इनसे हूँ पृथक यही माने ॥२८॥
माया गुण भोगों में मोहित, अरु काम्य कर्म में लिपटाये ।
करमों के रसते से ज्ञानी, उन मूढ़ों को मत विचलावे ॥२९॥

अध्यातम बुद्धी से अर्जुन सब अर्पण मुझको कर्म करो ।
फल इच्छा मोह ममता तजकर, चिन्ता विहीन हो युद्ध करो॥३०॥
जो मनुष्य श्रद्धायुत होकर मेरे इस मत पर जाते हैं ।
वह नित्य कर्म को करते भी, करमों से मुक्ती पाते हैं ॥३१॥
जो इस मत को नहिं मानत हैं, निन्दा के बचन सुनाते हैं ।
सो मूरख मूढ़ अचेत हुये खुद ही विनाश हो जाते हैं ॥३२॥
ज्ञानी अरु प्राणी कर्म करें, परकिरती स्वभाव जैसा हो ।
आदत के वश हैं सब प्राणी, इन्द्रिय निग्रह फिर कैसा हो ॥३३॥
इन्द्रिन का निज निज विषयों में फैलाव राग द्वेषादिक हैं ।
उनके वश होना उचित नहीं, दोनों सत पथ के बाधक हैं ॥३४॥
निज धर्म न्यून होने पर भी, पर उच्च धर्म से भला मान ।
निज धर्म विषय मरना अच्छा, भयदायक दूजा धर्म जान ॥३५॥

अर्जुन ने कहा ।

किस करके प्रेरित किया भया, प्राणी पापों को करता है ।
बिन इच्छा किस के बल करके, पापों में पुरुष विचरता है ॥३६॥

श्रीकृष्ण ने कहा ।

हैं काम क्रोध आदी जिनकी, उत्पत्ति रजोगुण से जानो ।
हैं भोगी पापी प्रबल इन्हें, अपना बैरी बाधक मानो ॥३७॥
अगनी धूवां से ढाकत है, दरपण मल के आ जाने से ।
झिल्ली से गर्भ ढके जैसे, तस ज्ञान काम छा जाने से ॥३८॥
ज्ञानिन के ज्ञान ढके इसने, इसके वश प्राणी मात्र सभी ।
अर्जुन यह काम दुसह अगनी, भोगों से होय नहिं तुष्ट कभी॥३९॥
इन्द्रियगण मन बुद्धी इसका, रहने का स्थान कहाता है ।
इस करके ज्ञान छाय करसो, आतम में मोह उपजाता है ॥४०॥
इस कारण पहिले इन्द्रिन को, वश करके इसको दमन करे ।
कारण यह काम भयंकर है, विज्ञान ज्ञान को शमन करे ॥४१॥

इन्द्रियां देह से उत्तम हैं, इन्द्रिन से मन बढ़कर जानो ।
मन से बुद्धी को श्रेष्ठ कहा, तिससे आतम उत्तम मानो ॥४२॥
बुद्धी से आतम श्रेष्ठ जान, थिरता से मन को वश लावो ।
इस काम रूप दुर्जय पर तुम, हे कुन्ती पुत्र विजय पावो ॥४३॥
वेदान्त सार भगवद्गीता, सब जाति देश में व्याप्त हुई ।
सूरज अनुवादित कर्म योग, तीजी अध्याय समाप्त हुई ॥४४॥

हरि ॐ तत्सत्

चौथा अध्याय

श्रीभगवान् ने कहा।

सूरज को ऐसा अतुल योग, मैंने ही प्रथम सुनाया था ।
उसने मनु को मनु ने निज सुत, इक्ष्वाकू को बतलाया था ॥ १ ॥
फिर राज ऋषिन को विदित हुवा, यूँ परम परा से आया है ।
बहु काल बीतने से अर्जुन, लोगों ने इसे भुलाया है ॥ २ ॥
वह गुप्त पुरातन योग तुम्हें, अर्जुन मैंने बतला-1 है ।
तुम परम भक्त मम मीत सखा, तिस कारण भेद सुनाया है ॥ ३ ॥

अर्जुन ने कहा।

सूरज ने जनम लिया पहले, अरु तुमने पीछे पाया है ।
तब कैसे हम जानें तुमने, सूरज को ज्ञान सुनाया है ॥ ४ ॥

श्रीभगवान् ने कहा।

अर्जुन सुन मेरे अरु तेरे, अब तक बहु जन्म व्यतीत हुवे ।
तुमको कुछ उनका बोध नहीं, तदपी सब हमें प्रतीत हुवे ॥ ५ ॥
यदपी अजन्म अव्यय हूँ मैं, सब प्राणिन का ईश्वर पत हूँ ।
तो भी निज प्रकृति में स्थित हो निज माया से खुद उपजत हूं ॥
जब जब अर्जुन धर्मों के विषय, लोकों में ग्लानि पाता हूं ।
बढ़ती अधर्म की रोकन को, तब निज आतम उपजाता हूँ ॥ ७ ॥

साधू नेकों की रक्षा हित, पापी जन को संहार करें ।
सत धर्म स्थापन करने को, हम युग युग में अवतार धरें ॥ ८ ॥
जो दिव्य जन्म अरु कर्म मेरे, यों तत्व सहित जो ज्ञाता है ।
सो देह त्याग फिर नहिं जन्मे, अर्जुन मुझमें मिल जाता है ॥ ९ ॥
जिन राग द्वेष भय क्रोध त्याग, मेरे हो मेरी शरण लिये ।
शुध होकर ज्ञान तपस्या से, बहु ज्ञानी मुझमें समा गये ॥१०॥
जो जैसे हमको भजते हैं, तैसे हम तिनको ध्याते हैं ।
अर्जुन सब भांती सब प्राणी, मेरे ही पथ पर आते हैं ॥११॥
देवादिक को पूजत हैं जो, करमों की सिद्धी चाहते हैं ।
सो मनुष लोक में जल्दी ही, करमों से सिद्धी पाते हैं ॥१२॥
मैंने ही चारों वर्णों को, गुण कर्म अनुसार रचाये हैं ।
मोहे जान अकर्ता अविनाशी, यद्यपि मैंने ही बनाये हैं ॥१३॥
फल की अभिलाषा नहीं मुझे नहिं करम लिप्त ही करते हैं ।
जो जानत हैं मुझको ऐसा, सो कर्म बन्ध नहिं पड़ते हैं ॥१४॥
मुक्तिच्छुक पूर्व पुरुषों ने इस विधि जाना अरु कर्म किया ।
अर्जुन तुम कर्म करो तैसे, पूरब पुरुषों ने धर्म किया ॥१५॥
क्या कर्म और क्या अकरम है, सोचत पण्डित चकरावेगा ।
सो कर्म कहत हूं जान जिसे, पापों से मुक्ति पावेगा ॥१६॥
जानो विक्रम अरु कर्मों को, अकरम कर्मों को भी जानो ।
यह विषय जटिल गम्भीर गूढ़, कर्मों की गति गहन मानो ॥१७
कर्मों में अकरम देखत जो, अरु देखत अकरम माहिं करम ।
सब करमों को करनेवाला सो योगी है अरु ज्ञानि परम ॥१८॥
जिसके उद्योग कर्म सारे, इच्छा संकल्प रहित रहते ।
सब कर्म ज्ञान से दग्ध हुवे, तिसको पंडितज्ञानी कहते ॥१९॥
त्यागे जो संग करम फल का, जो निराधार सतुष्ट सदा ।
सो जन करमों में लगा हुआ, सो करता कुछ भी नहीं कदा ॥२०

जो योग करम का जिज्ञासु, सो शब्द ब्रह्म को पाता है ॥४४॥
अभ्यास यतन कर योगी का, जब मल शोधन हो जाता है।
सो सिद्ध होय बहु जन्मों में, तब परम गती को पाता है ॥४५॥
करमी तप धारिन ज्ञानिन से, योगी को ऊंचा माना है।
अर्जुन इस कारण योगी हो, अभ्यास मुख्य सब जाना है ॥४६॥
योगिन में जो योगी मुझ को, श्रद्धायुत भजता ध्याता है।
लो लगी सदा मन से मुझ में, सो मुझ में युक्त कहाता है ॥४७॥
वेदान्त सार भगवद्गीता, सब जाति देश में व्याप्त हुई।
सूरज्ञ विर्चित अभ्यास योग, छठवीं अध्याय समाप्त हुई ॥४८॥

हरि ॐ तत्सत्

सातवां अध्याय

भगवान् ने कहा

अर्जुन मुझ में मन लगा हुआ, जो शरण हमारी आवेगा।
संदेह रहित पूरा पूरा, सुन जैसे हमको पावेगा ॥ १ ॥
विज्ञान सहित सब ज्ञान तुझे, अर्जुन विस्तृत बतलाता हूं।
जिसको सुन बाकी रहे न कुछ, सो गूढ़ महत्व सुनाता हूं ॥ २ ॥
कोइ एक हजारों पुरुषों में, करता उपाय सिध्यारथ है।
इन यतनी सिद्धों में से भी, कोई जानत मुझे यथारथ है ॥ ३ ॥
भू जल अगनी वायू आकाश, अर्जुन मन बुद्धी अहंकार।
बस यही प्रकिरती है मेरी, ऊपर वर्णित आठों प्रकार ॥ ४ ॥
अपरा से भिन्न मेरी प्रकृति है जीव स्वरूप परा जानों।
जिससे धारण हो सकल जगत, हे अर्जुन तुम ऐसा मानों॥ ५ ॥

अर्ज़ुन दोनों को ही कारण, सब जीव जगत का जानो तुम।
सारी सृष्टी की मुझ से ही, उत्पत्ति लय हो मानो तुम ॥६॥
हे अर्जुन मुझ से अधिक परे कुछ नहीं और ना आगे हैं।
मुझ में सब जग यूं पोया है, जिमि माला मण के धागे हैं ॥७॥
अर्जुन मैं रस हूँ जलों विषै, हूं प्रभा चाँद अरु भानव में।
ओंकार वेद आकाश, शब्द, आशा पुरुषार्थ मानव में ॥८॥
पृथ्वी में पवित्र गन्ध रूप, अरु तेज रूप हूँ अगनिन में।
तप रूप तपस्विन में मैं हूं, जीवन हूँ सारे प्राणिन में ॥९॥
हे पृथा पुत्र सब भूतों का, हूं बीज सनातन मानो तुम।
मैं तेजस्विन का तेज बुद्धि, बुद्धीमानों में जानो तुम ॥१०॥
मैं काम राग वर्जित अर्जुन, बलवालों में बलवाला हूँ।
मैं धर्म सहित सब भूतों में, इच्छा उपजाने वाला हूँ ॥११॥
राजस तामस अरु सात्विक गुण तीनों को मुझ से जानो तुम।
अर्जुन मैं तीनों में नहिं हूँ वे मुझ में ऐसा मानो तुम ॥१२॥
इन तीन गुणों के भावों ने, सब प्राणिन को मोहित कीना।
सारा जग मोह में फंसा हुवा, मुझ अविनाशी को नहिं चीना ॥१३
मेरी माया त्रिगुणा देवी, बहु कठिन लांघने में आवे।
अर्जुन जो मेरी शरण गहे, मेरी माया से तर जावे ॥१४॥
माया से ज्ञान विनाश हुवा, दुष्कर्मी मूढ़ नीच जेते।
आसुरी भाव जिन शरन लई, सो मेरी शरण नहीं लेते ॥१५॥
सुकृत जन मुझको भजते हैं, जो चार प्रकार कहाते हैं।
दुखिया, जिज्ञासु, कामेच्छुक और ज्ञानी मुझ को ध्याते हैं ॥१६॥
नित युक्त एक की भगती में, सो ज्ञानी सब से न्यारा है।
निश्चय ज्ञानी को मैं प्यारा, अरु ज्ञानी मुझ को प्यारा है ॥१७॥
यूं तो यह सब ही उत्तम हैं, पर ज्ञानी आतम रूप जान।

सब से उत्तम जो भाव मेरा, तिसमें ज्ञानी की स्थिती मान ॥१८
अर्जुन बहु जन्मों के अन्तर, ज्ञानी जन मुझ को पाते हैं ।
जो ब्रह्म रूप सब को समझे, सो दुर्लभ बड़ा कहाते हैं ॥१६॥
मूरख अविवेकी इच्छावश, निज स्वभाव वश हो जाते हैं ।
तिन तिन नियमों की शरण हुवे, तैसे देवों को ध्याते हैं ॥२०॥
जिस देव देह को श्रद्धा से, जो भक्त पूजना चाहता है ।
उसकी श्रद्धा अनुसार उसे, मेरा क्रम अचल बनाता है ॥२१॥
सो नर श्रद्धा में युक्त हुवा, उनका आराधन लाता है ।
मुझ से जो रचित कामनायें, तिन करके तिनको पाता है ॥२२॥
अज्ञानिन को तिन से जो मिले, फल नाशवान् सो कहलावें ।
सुर पूजक पावें देवन को, मेरे पूजक मुझ को पावें ॥२३॥
मुझ अव्यक्ती को व्यक्त रूप, मूरख अज्ञानी मानत हैं ।
अविनाशी अरु सब से उत्तम, पर रूप मेरा नहिं जानत हैं॥२४॥
मैं छुपा योग माया में हुवा, सब को मैं नहिं परकाशी हूँ ।
मुझको यह मूढ़ नहीं जानें, मैं अजन्म अरु अविनाशी हूँ ॥२५॥
गत भूत भविष्यत् वर्तमान, सब भूतों का मैं ज्ञाता हूँ ।
अज्ञानी मुझको नहिं जानें, अर्जुन तुमको बतलाता हूँ ॥२६॥
जो राग द्वेष करके उपजत, सो सुख दुख द्वन्द्व में फंसते ।
सब प्राणी शरीर धरते ही, मोह माया में बस हैं धंसते ॥२७॥
सुकृतजन जिन के पाप कटें, अरु मोह माया को तजते हैं ।
निर्द्वन्द्व अरु समदर्शी हैं, सो दृढ़ हो मुझ को भजते हैं ॥२८॥
जो जरा मरण से मुक्ती हित, मेरा शरणा ले यतन करें ।
सो कर्म और अध्यातम सब, उस पार ब्रह्म को जान पड़ें ॥२६॥
अधिभूत सहित अधिदेव, और अधियज्ञ सहित पहचानत हैं
सो युक्त चित्त साधू मुझको, देहान्त समय भी जानत हैं ॥३०॥

वेदान्त सार भगवद्गीता, सब जाति देश में व्याप्त हुई ।
सूरज विर्चित विज्ञान योग, सप्तम अध्याय समाप्त हुई ॥

॥ हरि ॐ तत्सत् ॥

आठवां अध्याय

अर्जुन ने कहा ।

वह ब्रह्म और अध्यातम क्या, कैसे क्या कर्म कहाते हैं ।
हे कृष्ण कहो अधिभूत कौन, अधिदेव किसे बतलाते हैं ॥ १ ॥

हे मधुसूदन इस देह अन्दर, अधियज्ञ कौन अरु कैसे हैं ।
इन्द्रिय जीतों से अंत समय, जो जानन योगू जैसे हैं ॥ २ ॥

श्रीभगवान् ने कहा ।

हैं नाश रहित सो परम ब्रह्म, अध्यातम स्वभाव को मानो ।
प्राणिन रचिता वृद्धी करता, यज्ञों को कर्म संज्ञ जानो ॥ ३ ॥

मम पुरुष भाव को अधीदेव, अधिभूत विनाशी को जानो ।
अधियज्ञ मुझे इन देहों में, तुम अर्जुन कुन्ती सुत मानो ॥ ४ ॥

जो अन्त समय मुझको भजकर, देही को तजकर जाता है ।
इसमें कुछ भी सन्देह नहीं सो मेरा स्वरूप पाता है ॥ ५ ॥

जिन भावों को सुमरन करता, प्राणी देही को तज जाता है ।
अपने भावों से रंगा हुवा, वह उसी भाव को पाता है ॥ ६ ॥

तिस करके अर्जुन युद्ध करो, जो मुझे निरंतर ध्यावोगे ।
मन बुद्धी मेरे अर्पण कर, तो अवश्य मुझ को पावोगे ॥ ७ ॥

अभ्यास योग से युक्त चित्त, अरु इधर उधर नहिं जाता है ।
अर्जुन मेरा चिन्तन करता, मुझ परम पुरुष को पाता है ॥ ८ ॥

सर्वज्ञ पुरातन शासक जो सूक्ष्म से सूक्ष्म को ध्यावे ।
सूरज सम दीप्त जगत धरता, तम से पर अचिन्त्यको पावे॥ ६॥
भक्तीयुत निश्चल योग युक्त जो अन्त समय हो जाता है ।
भौं वीच प्राण को ठीक खैंच सो परम पुरुष को पाता है ॥१०॥
वेदज्ञ जिसे अक्षर कहते, वैरागी जिसे यती पावें ।
वह पद संक्षेप कहूँ जिसको ब्रह्मचर्य साधकर जो चाहवें ॥११॥
सब द्वारों को आधीन करे, अरु हृदय बीच मन को रोके ।
मूर्धा में प्राण स्थापन कर, चित योग धारणा में ठोके ॥१२॥
ब्रह्मरूप ॐ इक अक्षर को, उच्चारे अरु मुझ को ध्यावे ।
सो इस देही के तजने पर, वह योगी परम गति पावे ॥१३॥
जो नित्य अचूक सुमर्ण करे, मन भी जिसका नहिं डोलावे ।
सो सदा योग में लगा हुवा, सो योगी सहज मुझे पावे ॥१४॥
योगी महात्मा साधूजन, जो परम रूप हो जाते हैं ।
सो दुखका घर अस्थिर अनित्य फिर जनम मरण नहिं पाते हैं॥१५
सो ब्रह्मलोक तक लोक सभी, पुनरावागमन बनाते हैं ।
जो योगी हमको प्राप्त हुवे, सो बहुरि जनम नहिं पाते हैं ॥१६॥
दिन एक हजार युगों का है, ब्रह्मा का जानत हैं ध्यानी ।
तैसे है रैन हजार युगी, दिन रातों को जानत ज्ञानी ॥१७॥
अव्यक्त रूप से सब व्यक्ती, दिन उगने पर प्रगटाते हैं ।
उस ही अव्यक्त रूप में सब, दिन छुपे लीन हो जाते हैं ॥१८॥
इमि हो हो कर वह भूत समुह, पुनि २ विलीन हो जाता है ।
दिन मुँदे लीन हो जाता है, दिन निकले पुनि उपजाता है ॥१६॥
अव्यक्त रूप से परे एक, अव्यक्त सनातन भाव कहा ।
भूतों के विनाश होने पर, सो नाशवान नहिं होत कदा ॥२०॥
अव्यक्त सनातन जो अक्षर, अरु परम गती कहलाता है ।
सो पद वह ऊंचा है मेरा, जो पाय बहुरि नहिं आता है ॥२१॥

सब जग टिका जिसके अन्दर, जिसमें उपजत फैलाता है ।
हे अर्जुन सो पर पुरुष परम, भक्ती से पाया जाता है ॥२२॥
जिस काल गये योगी बहुरी आते हैं या नहिं आते हैं ।
पुरुषों में श्रेष्ठ सुनो अर्जुन, सो समय तुम्हें बतलाते हैं ॥२३॥
अगनी ज्योती दिन शुक्ल पक्ष, उत्तरायण छः माह कहलावें ।
जो परम ब्रह्म के ज्ञाता हैं, उस मारग जाय ब्रह्म पावें ॥२४॥
धूंवा रजनी अरु कृष्ण पक्ष, दक्षण षट मास कहाते हैं ।
शशियुत ज्योती में जाते हैं, सो योगी पुनि लौटाते हैं ॥२५॥
यह शुक्ल कृष्ण दोनों मारग, जग विषे सनातन आते हैं ।
पहले से गये न लौटत हैं, दूजे से पुनि लौटाते हैं ॥२६॥
कुछ मोह नहीं लाता है वह, दोनों रस्तों का जो ज्ञाता ।
सब संशय भ्रम मन के तज कर, अर्जुन तू योग युक्त होजा ॥२७॥
वेदों यज्ञों तप दानों में, जो पुण्य बताया जाता है ।
उन सब को उलांघ कर योगी, सब से उत्तम पद पाता है ॥२८॥
वेदान्त सार भगवद्गीता, सब जाति देश में व्याप्त हुई ।
सूरज अनुवादित अक्षर ब्रह्म, आठवीं अध्याय समाप्त हुई ॥२९॥

हरि ॐ तत्सत्

नवां अध्याय

भगवान् ने कहा

तुझ गुण ग्राही को सत्य २, यह गूढ़ ज्ञान बतलाता हूँ ।
जो ज्ञान पाप से छूटे सो, विज्ञान सहित समझाता हूँ ॥ १ ॥
विद्यावों, भेदों, में बढ़ कर, प्रत्यक्ष परम हितकारी है ।
सो ज्ञान, धर्मयुत, साधन में, आसान और अविकारी है ॥ २ ॥

श्रद्धा विहीन जो धर्म विषे, सो अर्जुन मुझे न पाते हैं।
इस नाशवान जग में फिर २, वह जीव लौट कर आते हैं ॥ ३ ॥
अव्यक्त रूप वाले मैंने, इस सारे जग को घेरा है।
सब भूत मेरे में व्यापत हैं, उनमें टिकाव नहिं मेरा है ॥ ४ ॥
ऐश्वर्य योग मेरा देखो, भूतों में नहीं टिकता हूँ।
धारण करता हूँ स्थित नहिं हूँ, मैं सब का जीवन दाता हूँ ॥ ५ ॥
जैसे वायू आकाश विषे, सारे चलता है वेगवान।
तैसे ही सर्व भूत प्राणी, मुझ में थित है यूं भेद जान ॥ ६ ॥
कलपान्त समय यह सर्व भूत, मेरी प्रकृति को पाते हैं।
पुन आदि समय अर्जुन मुझ से, सब फिर पैदा हो जाते हैं ॥७॥
सारे इन भूत समूहों को, बेबस माया की शक्ती से।
पुन २ रचता हूँ सृष्टी को, आश्रित निज प्रकृति व्यक्ती से ॥ ८ ॥
मैं अनासक्त अरु उदासीन, करमों में सदा विचरता हूँ।
सो कर्म बन्ध में हे अर्जुन, कुन्ती सुत मैं नहिं पड़ता हूँ ॥ ९ ॥
माया आधीनता में मेरे सब जीव चराचर उपजावे।
हे कुन्ती सुत इस कारण ही, यह जग नित परिवर्तन पावे ॥१०
नर देही में लख कर मुझ को, मूरख कहना नहिं मानत हैं।
भूतों के महान ईश्वर का, मेरो प्रभाव नहिं जानत हैं ॥११॥
झूठे करमी थोथे ज्ञानी, झूठी आशा में लीन हुवे।
आसुरी राक्षसी मोह रूपी, माया बस होके हीन हुवे ॥१२॥
दैवी प्रकिरति की शरण हुवे, साधूजन भजते अभ्यासी।
नित अनन्य मन से लख मुझको, भूतों का आदी अविनाशी ॥१३
नित मेरी महिमा गाते हैं, यति दृढ़ ब्रत में लगने वाले।
भक्ती श्रद्धायुत उपासना, नित करें मुझे भजने वाले ॥१४॥
दूजे नर यज्ञ उपासना में, पूजत हैं ज्ञान यज्ञ द्वारा।
इक रूप जान या भिन्न भिन्न, क्यूँ की मैं हूँ सब मुख वारा ॥१५

मैं हूँ यज्ञ ऋतु सारे, और स्वधा औषधी मैं ही हूँ।
सब यज्ञ कर्म समझो मुझको, अरु द्रव्य मन्त्र घी मैं ही हूँ॥१६॥
मैं ही सबका हूँ जगतपिता, दादा माता अरु धाता हूँ।
जानने योग्य ओंकार शब्द, ऋग साम यजुर का ज्ञाता हूँ॥१७॥
गति, भरता मीत, प्रभू, साक्षी, मैं शरण निकास सिद्धि मैं हूँ।
आधार, प्रलय, स्थिति, उत्पत्ति, अरु अव्यय बीज बृद्धि मैं हूँ॥
वरषा को रोकत, वरसावत, मैं ही सब जगत तपाता हूं।
अमरत्व, मौत, दोनों मैं हूं, मैं ही सत असत कहाता हूं॥१६॥

त्रैवेदी यज्ञों में मुझको, कर यजन सोमरस पान करें।
निष्पाप स्वर्ग सुरलोक जाय, तहां देवन के दिव भोग लहैं॥२०॥
सो स्वर्ग लोक के भोग भोग, हो क्षीण पुण्य मृत लोक आंय।
यूं त्रई धर्म की शरण लिये, आगमन भोग कामना पांय॥२१॥
जो अनन्य भक्ति से मुझको, चिन्तत पूजत अरु ध्याते हैं।
जो हैं नित मुझ में लगे हुवे, तिनका हम योग निभाते हैं॥२२॥
जो श्रद्धायुत अरु भक्ती से, दूजे देवों को ध्याते हैं।
भ्रम युत मुझको ही पूजत हैं, पर विधी हीण कहलाते हैं॥२३॥
क्यूंकी सब यज्ञों का हमको, स्वामी अरु भोगी मानत हैं।
वह गिर जाते हैं निष्ठा से, कारण नहिं मुझको जानत हैं॥२४॥
देवन के पूजक देव पांय, पित्री पूजक पित्रिन पावें।
भूतों के पूजक भूत लहैं, मुझको पावें जो मोहि ध्यावें॥२५॥
जो पान फूल फल जल हमको, भक्तीयुत भोग लगाते हैं।
श्रद्धा से हमें करें अर्पण, सो भोग प्रेम से पाते हैं॥२६॥
जो हवन करे कुछ देता है, जो कुछ करता अरु खपता है।
अर्जुन सब मेरे अर्पण कर, तू जो जपता अरु तपता है॥२७॥
ऐसे शुभ अशुभ फलों वाला, सब कर्म बंध छुट जावेगा।
सन्यास योग युत मन होकर, तिनसे छुट मुझको पावेगा॥२८॥

अर्जुन ने कहा

तीनों गुण उलांघने वाला, होते हैं क्या उसके लक्षण ।
किन उपाय से लांघत उनको, व्योहार करत कैसे भगवन् ॥२१॥

भगवान् ने कहा

मोह ज्ञान प्रमाद प्रकृति विषे, कुन्ती सुत ऐसे वर्तत हैं ।
संयोग होय तो द्वेष नहीं नहिं निवृत्त हुओं को चाहत हैं ॥२२॥
जो उदासीन है टिका हुवा, त्रिगुणों से मोह न उपजावे ।
गुण वर्तत हैं इमि जानत हैं, आतम थित है नहिं डोलावे ॥२३॥
कारण निज स्वरूप में थित है, सो सुख दुख को सम जानत है
सो धीर स्वर्ण रज अप्रिय प्रिय, निन्दा स्तुति सम जानत है ॥२४
बैरी अरु मित्र समा जिसके, अपमान मान नहिं लाता है ।
सब कामारम्भ त्याग दीने, सो गुणातीत कहलाता है ॥२५॥
जिन अव्यभिचारी भक्ती से, मेरी सेवा नित धारी है ।
वह तीन गुणों को उलांघ कर, पर ब्रह्म भाव अधिकारी है ॥२६॥
आधार मोक्ष अरु अविनाशी, मैं ही हूँ सारे ब्रह्माण्ड का ।
नित रहने वाले धर्मों में सो दाता मैं सुख अखण्ड का ॥२७॥
वेदान्त सार भगवद्गीता, सब जाति देश में व्याप्त हुई ।
सूरज वर्णित गुण त्रय विभाग, चौदहवीं अध्याय समाप्त हुई ॥

॥ हरि ॐ तत्सत् ॥

पन्द्रहवां अध्याय

श्री भगवान् ने कहा

ऊपर जड़ अरु नीचे शाखें, बड़ रूप जगत को माना है ।
हैं छन्द रूप जिसके पत्ते, वेदज्ञ वही जिन जाना है ॥ १ ॥
नीचे ऊपर शाखें फैली, त्रिगुणों से पोषण वृद्ध होत ।
कोपलें विषय अरु नीचे जड़, सो कर्म बन्ध है मनुष लोक ॥ २ ॥

सो बड़ स्वरूप इस दुनियांका, थिति आदि अन्त नहिं जान पड़े
सो दृढ़ जड़वाले इस बड़ को, बैराग्य खड़ग से काट धरे ॥ ३॥
तब उस पद को खोजे यतनी, जहं पहुँच फेर नहिं लौट परे।
वह आदि पुरुष जिन जगत रचा, केवल उसकी ही शरण गहे॥४
मोह मद आदी दूषण छोड़े, अध्यातम थित हो काम तजे।
सुख दुख द्वन्द्व से छूटत सो, ज्ञानी अविनाशी ब्रह्म बसे ॥ ५॥
जिसको शशि अगन और सूरज, आभासित नहीं बनाता है।
जिसको पा फिर नहिं लोटत हैं, सो ब्रह्म धाम कहलाता है ॥ ६
सो जीव लोक में जीव रूप, मेरा ही अंश सनातन है।
जो प्रकृति में थित खैंचत है, पांचों इन्द्रिय छटवां मन है ॥ ७॥
सो जीव रूप सब देही में, आता है अरु जब जाता है।
स्थानों की गन्ध पवन धारे, तिमि जीव भाव ले जाता है ॥ ८॥
आंखें अरु कान त्वचा रसना, नासिका और छटवां जो मन।
भोगत विषयों को जीव सदा, अधिपति स्वामि इन सबका बन॥९॥
देही में थित या निकलत को, अर्जुन अल्पज्ञ नहीं जानें।
गुणयुत विषियनको भोगत को, मूरख नहिं ज्ञानी जन स्यानें॥१०
योगी यतनी को यह आतम, अपनी आतम में दर्शावे।
संदेही चित भ्रम मलीन मन, सो यतन करत भी नहिं पावे॥११॥
जो तेज सूर्य में व्यापक है, जिससे सब जगत प्रकाशमान।
जो चांद विषय अरु अगनी में, सो मेरा तेज विकाश जान॥१२॥
पृथवी में हो सब भूतों को, निज बल से धारण तुष्ट करूं।
रस रूप सोम होकर सारी, मैं औषधियों को पुष्ट करूं ॥१३॥
होकर जठराग्नि देही में, प्राणिन के टिकाव पाता हूँ।
मैं प्राण अपान विषे टिककर, चहुँ भांती अन्न पकाता हूं ॥१४॥
मैं सबके मन में टिका हुआ, हूँ ज्ञान चेतना का दाता।
सब वेदों से जानने योग्य, आदी गुरु वेद अरथ ज्ञाता ॥१५॥

दो पुरुष जगत में व्यापक हैं, क्षर अरु अक्षर अर्जुन जानो ।
सब भूत देह क्षर रूप कहें, अक्षर है जीव रूप मानो ॥१६॥
दोनों से जुदो पुरुष उत्तम, सो परमातमा कहाता है ।
सो अविनाशी धारक पोषक, प्रभु तीन लोक का ज्ञाता है ॥१७॥
इस कारण क्षर अरु अक्षर से, दोनों से मुझे बड़ा जानो ।
इसलिये लोक अरु वेदों में, मुझको तुम परम पुरुष मानो ॥१८॥
जो मुझे इस तरह जानत हैं, सर्वज्ञ सर्वगत पुरुषोत्तम ।
अर्जुन निश्चित मति भजे मुझे, सब भावों में लख सर्वोत्तम॥१९॥
यह गुप्त ज्ञान जिसने जाना, जो मैंने तुम्हें बताया है ।
जिमि ज्ञानी सफल मनोरथ हो, अर्जुन सो तुम्हें सुनाया है॥२०॥
वेदान्त सार भगवद्गीता, सब देश जाति में व्याप्त हुई ।
सूरज अनुवादित पुरुषोत्तम, पन्द्रहवीं अध्याय समाप्त हुई॥

॥ हरि ॐ तत्सत् ॥

सोलहवां अध्याय

श्री भगवान् ने कहा

दृढ़ता हो ज्ञान योग में अरु, चित की शुद्धी डर का अभाव ।
इन्द्रियन दमन अरु दान यज्ञ, स्वाध्याय और तप सरल भाव॥१॥
अक्रोध अहिंसा सत्य और, नरमी लज्जा अरु दयाभाव ।
निर्लोभी चञ्चलता विहीन, अभिमान रहित द्रोह का अभाव॥ २ ॥
धीरज क्षमता अरु शौच तेज, वैराग्य शान्ति निन्दा अभाव ।
दैवी सम्पदा सहित जन्मे, अर्जुन यह तिन नर के स्वभाव ॥ ३ ॥
पाखण्ड दर्प अभिमान क्रोध, अज्ञान तमोगुण क्रूर भाव ।
आसुरी सम्पदायुत जनमे, अर्जुन तिनके उल्टे स्वभाव ॥ ४ ॥
दैवीसम्पद मुक्तीदाता, आसुरी बन्ध का कारण है ।
हे पांडुसुत तू शोक न कर तू दैवी सम्पद धारण है ॥ ५ ॥

दो भांती जीव सृष्टि जग में, दैवी आसुरी बताते हैं ।
दैवी विस्तार सहित कह दी, सुनिये आसुरी सुनाते हैं ॥ ६ ॥
आसुरी प्रकिरती वाले जन, नहिं निवृत्ति प्रवृति जानत हैं ।
वह सत्य भाव से हीन पुरुष, शुद्धी, अचार नहिं मानत हैं ॥ ७ ॥
वह कहते हैं जग झूठा है, बिन जड़ है बिन ईश्वर धारण ।
इक दूजे का संयोग काम, जग उत्पत्ती का है कारण ॥ ८ ॥
इस विचार का सहारा लेकर, अल्पज्ञ मलीन बताते हैं ।
शत्रु की भांती इस जग को, क्षय करने को ही आते हैं ॥ ९ ॥
मदमान दम्भ अरु मोहयुक्त, झूठा निश्चय चित धरते हैं ।
अपवित्र व्रतों में लगे हुए, अनगिणत वासना करते हैं ॥१०॥
बस भोग कामना ही सब कुछ, है केवल ऐसा मत जिनका ।
ऐसे अगणित चिन्तित कामी, है अन्त मौत केवल तिनका ॥११॥
आशाओं की शत फांस फँसे, मोह काम क्रोध में हो आतुर ।
अन्याययुक्त धन ढेरों को, चाहते हैं विषय भोग खातर ॥१२॥
पा लिया मनोरथ यह मैंने, अब अमुक कामना पाऊँगा ।
यह माल खजाना है मेरा, यह धन मैं फेर कमाऊँगा ॥१३॥
वह दुश्मन मैंने मार लिया, दूजे को मार गिराऊंगा ।
सम्पती भोग भरपूर सुखी, मालिक बलवान कहाऊँगा ॥ १४॥
मैं धनी चतुर मैं कुलीन हूँ, नहिं मेरे सम कोई जाया ।
पुन दान यज्ञ आनन्द करूं, अज्ञान मोह यूँ भरमाया ॥१५॥
बहु भ्रांत चित्त घबराये हुए, मोह की फांसी फँस जाते हैं ।
भोगों विषयों में फँसे हुए, सो घोर नरक को पाते हैं ॥१६॥
अपने में आप बड़े बनकर, धनमोद अकड़ पग धरते हैं ।
सो दम्भ सहित अरु विधीहीन, अरु नाम मात्र यज्ञ करते हैं ॥१७
बल दर्प काम अरु अहंकार, अन्याय क्रोध आसरा धरत ।
अपने दूजे की देहों में, मुझसे अजान हो द्वेष करत ॥१८॥

जो नीच क्रूर अरु अधम पुरुष, तिससे यह नीति पालत हूँ।
राक्षस योनिन में लगातार, पापी जन को मैं डालत हूँ ॥१६॥
आसुरी योनियों को पाकर, मुझको बहु जन्म न पाते हैं।
वे मूरख अज्ञानी अर्जुन, नित अधम गती को जाते हैं ॥२०॥
आतम को नाश करन वाले, लालच अरु क्रोध काम जागे।
है तीनों त्रिविध नरक द्वारे, इस कारण तीनों को त्यागे ॥२१॥
इन तीन तमोगुण द्वारों से, छुट सुकृत में लग जाता है।
हे कुन्ती सुत सो सनै सनै, नर परम गती को पाता है ॥२२॥
जो निज इच्छा अनुसार चले, अरु शास्त्र विधी तजाता है।
सो सिद्धी को ना सुखों को, ना परम गती को पाता है ॥२३॥
यूं कार्य अकार्य व्यवस्था में, शास्त्रों का वचन मुख्य कहिये।
इमि धर्म विधान जान तुझको, यह करम यहां करना चाहिये ॥२४
वेदान्त सार भगवद्गीता, सब जाति देश में व्याप्त हुई।
सूरज दैव असुर संपद विभाग, सोलहवीं अध्याय समाप्त हुई॥

॥ हरि ॐ तत्सत् ॥

सतरहवां अध्याय

अर्जुन ने कहा

जो छोड़ शास्त्र विधियों को नर, श्रद्धायुत होकर यज्ञ करें।
उनकी निष्ठा फिर कैसी हो, सत रज वा तम क्या कुछ उचरें॥१॥

श्री भगवान् ने कहा

श्रद्धा प्राणिन की स्वभाव से, सात्विक राजस अरु तामस युत।
इन तीन भान्ति की होती है, तिनको मुझसे सुन कुन्ती सुत॥२॥

निज अन्तःकरणों के समान, जो श्रद्धा जिसकी है सो है ।
अर्जुन श्रद्धामय पुरुष कहा, जैसी श्रद्धा तैसा वोह है ॥ ३ ॥
सात्विक जन पूजत देवन को, राक्षस यक्षों अरु दैत्यों को ।
हे अर्जुन तामस जन पूजत, भूतों को अथवा प्रेतों को ॥ ४ ॥
जिनका विधान नहिं शास्त्रों में, जो जन ऐसे तप तापत हैं ।
अभिमान दंभ में युक्त हुये, अरु काम राग में व्यापत हैं ॥ ५ ॥
देह में व्यापक मुझ चेतन को, अरु भूत समूहों को जानों ।
नाहक दुख देकर निबल करें, तिनका आसुर निश्चय मानो ॥ ६ ॥
भोजन आदी अरु अन्य करम, तीनों का न्यारा न्यारा है ।
इनके सब भेद सुनो मुझसे, तप दान यज्ञ विस्तारा है ॥ ७ ॥
सुख बल अरोग्य उत्साह प्रीत, आयू वर्धक रस वारे जो ।
चिकने पक्के स्वादू मीठे, भोजन सात्विक को प्यारे सो ॥ ८ ॥
कड़वे खट्टे नमकीन गरम, रूखे तीखे अरु दाह वारे ।
सो भोजन प्यारे रज गुण को, दुख रोग शोक देने हारे ॥ ९ ॥
बेस्वादू अरु रस से विहीन, बासी अरु दुर्गंधी वारे ।
अपवित्र और खाटे भोजन, सो तमोगुणी को हैं प्यारे ॥१०॥
कर्तव्य समझ जो यज्ञ करे, फल की इच्छा नहिं लाता है ।
पूरे विधान अरु विधी युक्त, सो सात्विक यज्ञ कहाता है ॥११॥
जो फल उद्वेष प्रयोजन से, या नाम बड़ाई चाहता है ।
अर्जुन जिसमें है अर्थ लाभ, सो राजस यज्ञ कहाता है ॥१२॥
जो श्रद्धा विहीन किया जाय, अरु अन्न दान जिसमें न रहें ।
विधि मन्त्र और दछणा विहीन, अर्जुन तेहि तामस यज्ञ कहें ॥१३
द्विज देव पूज्य गुरु को पूजे, किसी को दुख जो नहिं पहुँचावे ।
ब्रह्मचर्य सरलता शुद्धी युक्त, सो शारीरिक तप कहलावे ॥१४॥
उद्वेग रहित निष्कपट सत्य, हितकर प्रिय वचन सुनाता है ।
स्वाध्याय विषे अभ्यास करे सो वाचक तप कहलाता है ॥१५॥

मन की सफ़ाई शुधता नरमी, सज्जनता मोन सधाता है।
हैं श्रेष्ठ भावनायें जिसमें, सो मानस तप कहलाता है ॥१६॥
एकाग्र चित्त इच्छा विहीन, श्रद्धा से तापा जाता है।
उप्रोक्त तीन विधियों करके, सो सात्विक तप कहलाता है ॥१७॥
सत्कार मान पूजा निमित्त, पाखण्ड युक्त जो किया जाय।
चञ्चल अस्थिरता वाला सो, कुन्ती सुत तामस तप कहाय॥१८॥
मूढ़ता भ्रमता से अपने को, पीड़ा दुख देकर किया जाय।
या दूजे को दुख देने को, अर्जुन सो तप तामस कहाय ॥१६॥
देना है अस कर्तव्य समझ, जिससे बदला नहिं चाहता है।
जो देश काल अरु पात्र युक्त, सो सात्विक दान कहाता है ॥२०॥
बदला फल हेतु और मद्युत, स्वारथ निन्दा वश दिया जाय।
जो तंगी से या बेमन से, सो दान राजसिक ही कहाय ॥२१॥
जो दान देश अरु काल हीन, या दिया कुपात्रन जाता है।
सत्कार और आदर विहीन, सो तामस दान कहाता है ॥२२॥
माना है ॐ तत्सत् को, अर्जुन त्रैभेदा ब्रह्म कथन।
इस करके ब्राह्मण वेद यज्ञ, अर्जुन पहिले हैं किये रचन ॥२३॥
वेदज्ञ वेद में वर्णित जो, तप दान यज्ञ में नियुक्त हों।
सारी क्रियाओं के प्रथम ॐ, अस उच्चारण कर प्रवृत्त हों ॥२४॥
तत् ऐसा कह कर मुक्तिच्छुक, फल की इच्छा चित नहिं धरते।
तप दान यज्ञ बहु भान्त विधि शास्त्रोक्त क्रियावों को करते ॥२५॥
सद् भाव और साधूपन में सत शब्द कथन में आता है।
शुभ मंगलीक सब कामों में, सत शब्द उचारा जाता है ॥२६॥
तप दान यज्ञ में लग जाना, कुन्ती सुत सत कहलाता है।
उनके निमित्त जो कर्म काण्ड, सो सब सत माना जाता है॥२७॥
श्रद्धा विहीन तप दान यज्ञ जो, किया कर्म कुछ जाता है।
इस लोक और परलोक विषय, सो सब ही असत कहाता है॥२८
वेदान्त सार भगवद्गीता, सब जाति देश में व्याप्त हुई।

सूरज कृत श्रद्धा त्रय विभाग, सतरवीं अध्याय समाप्त हुई ।
॥ हरि ॐ तत्सत् ॥

अठारहवां अध्याय

अर्जुन ने कहा

हे केशि निशुदन हृषीकेश, मधुसूदन विनय सुनाता हूँ ।
संन्यास योग अरु त्याग योग, भिन भिन्न समझना चाहता हूँ ॥१

श्रीभगवान् ने कहा

जो काम्य कर्म तिनका तजना, पंडित संन्यास बताते हैं ।
सारे कर्मों के फल तजना, गुणवान त्याग फर्माते हैं ॥ २ ॥
हैं दोष युक्त यूं कई सज्जन, सब कर्म त्याज्य फर्माते हैं ।
कई यज्ञ दान तप को भी त्याज्य, कई नहीं त्याज्य बतलाते हैं ॥३॥
इस त्याग विषय में, हे अर्जुन, निश्चय जो मैं ठहराया है ।
है त्याग तीन भेदों का जो, ज्ञानी जन ने बतलाया है ॥ ४ ॥
तप दान यज्ञ यह तीन कर्म, करने चहियें कभि नहिं बिसरें ।
कारण तप दान यज्ञ तीनों, बुद्धिमानों के चित शुद्ध करें ॥ ५ ॥
इन कर्मों को भी हे अर्जुन, फल संग त्याग करना चाहिये ।
मेरा यह निश्चय उत्तम मत, हे सखा ध्यान धरना चाहिये ॥६॥
आवश्यक कर्मों का तजना, कुछ नहीं योग्यता पाता है ।
मोह युक्त उन्हें त्यागन करना, अर्जुन तामस कहलाता है ॥ ७ ॥
जो शरीर के डर क्लेश से, या दुख से कर्म तजाता है ।
उसका यह त्याग राजसिक है, सो नहीं त्याग फल पाता है ॥ ८॥
फल की इच्छा अरु संग त्याग, जो काम किया कुछ जाता है ।
कर्तव्य बुद्धि के धारण से, सो सात्विक त्याग कहाता है ॥६॥
संशय भ्रम विनशे सो त्यागी, सात्विक जन की यह रीति है ।
अकुशल कर्मों से द्वेष नहीं, नहिं कुशल करम से प्रीती है ॥१०
सारे के सारे कर्मों को, नहिं त्याग सके प्राणी कोई ।
जो करम करत फल को त्यागे, सो सात्विक त्याग बजे सोई ॥११

यह बुरा भला अरु मिला जुला, त्रैविध फल कर्म कहाता है ।
सो होता फल संगी जन को, त्यागी कुछ फल नहिं पाता है॥१२॥
सारे कर्मों की सिद्धी में, सिद्धान्त सांख्य जो गाये हैं ।
हे अर्जुन तिनको सुन मुझ से, जो कारण पांच बताये हैं ॥१३॥

पहला शरीर दूजा कर्ता, तीजा इन्द्रिन के भेद ज्ञान ।
चौथे बहु भान्ति चेष्टायें, पांचवा दैव प्रारब्ध मान ॥१४॥

वाणी मन या शरीर द्वारा, धारे जो भली बुरी धारण ।
जिन कर्मों को आरम्भ करे, यह पांचों हैं उनके कारण ॥१५॥
ऐसा होते भी प्राणी जो, आतम को करता देखत है ।
वह दुर्बुद्धि अरु मलीन मन, कुछ ठीक ठीक नहिं देखत हैं ॥१६॥
जिसकी बुद्धी नहि लिप्त होय, जो अहंकार भी नहिं लावे ।
इन रणवीरों को मारत भी, ना मारत ना बन्धन पावे ॥१७॥
ज्ञाता अरु ज्ञान ज्ञेय तीनों, हैं कर्मों के प्रेरक मानो ।
कर्ता अरु करम करण तीनों, आसरा करम का तेहि जानो ॥१८॥

करता अरु करम ज्ञान तीनों, यह गुण के भेद बताये हैं ।
सुनना तुम ठीक ठीक इनको, जो तीन भेद के गाये हैं ॥१९॥

सब भूतों में अविनाशी को, जो एकी भाव लखावत है ।
न्यारापन का जो भेद तजे, सो सात्विक ज्ञान कहावत है ॥२०॥

जो न्यारे न्यारे भूतों में, नाना भावों को जानत हैं ।
वर्तत रूपों में जुदा जुदा, सो ज्ञान राजसिक मानत हैं ॥२१॥

जो एक काम में लगे हुवे, केवल उसको सब कुछ जानें ।
विषयी अयोग्य युक्ती विहीन, सो ज्ञान तमोगुणमय मानें ॥२२॥

हो स्वारथ पक्ष लगाव रहित, अरु राग द्वेष नहिं आता है ।
फल चाह बिना जो कर्म किया, सो सात्विक कर्म कहाता है॥२३॥

इच्छा फल चाहने वाले से, मद मोह सहित जो किया जाय ।
जो वित क्लेश दुखों वाला, सो कर्म रजोगुणमय कहाय ॥२४॥

हिंसा फल युत हाणी उठाय, मोह युत विन सोचे किया जाय ।
निज बल पोरुष के ध्यान विना, सो कर्म तामसिक ही कहाय॥२५

उत्साह धैर्य युत पक्ष रहित, स्वारथ लगाव अभिमान रहित ।
सिद्धी असिद्धि को लखसमान, सोकर्ता सात्विक शान्तिसहित २६

हिंसक लोभी रागी अशुद्ध, औरन सताय फल को चाहे ।
जो हर्ष शोक लावे दिल पर, सो कर्ता राजस कहलावे ॥२७॥

मूरख असमझ गाफिल गंवार, द्रोही निराश आलस लावे ।
ढीलङ अरु धूर्त दुराचारी, सो कर्ता तामस कहलावे ॥२८॥

अर्जुन बुद्धी अरु धृती भेद, गुण युत त्रैविधि कहलाते हैं ।
पूरा पूरा अरु पृथक पृथक, कुन्ती सुत सुनों बताते हैं ॥२९॥

अर्जुन प्रवृत्ति अरु निवृत्ति अरु, भय अभय बन्ध मुक्ती जाने ।
कर्तव्य अकर्तव को समझें, तिसको सात्विक बुद्धी मानें ॥३०॥

करने ना करने योग काम, जो ठीक ठीक नहिं जानत हैं ।
अनभिज्ञ अधर्म धर्म से जो, सो राजस बुद्धी मानत हैं ॥३१॥

जो बुद्धी तम से ढकी हुई, अधरम को धरम मनाती है ।
सत बातों को उलटा समझे, सो तामस धी कहलाती है ॥३२॥

मन प्राण इन्द्रियों की जो गति, जिससे धारण की जाती है ।
है योग युक्त अरु अटल अचल, सो सात्विक धृती कहाती है॥३३

जिससे इच्छायें धर्म अर्थ, मन में धारण की जाती हैं ।
सो फल की अभिलाषा वाली, राजसी धृती कहलाती हैं ॥३४॥

जिस धृती युक्त दुर्बुद्धी नर, भय शोक स्वप्न मद उपजावे ।
चिन्तातुर मोह युत रहे सदा, सो धृती तामसी कहलावे ॥३५॥

हैं तीन भान्त के सुख जिसमें, अभ्यासी आनन्द पाता है ।
हे अर्जुन तिनको सुन मुझसे, जिनसे नर दुख तर जाता है ॥३६॥

जो सुख आदी में विष समान, पर अंत स्वधा सम मधुर होय ।
आतम बुद्धी से प्रगट भया, आनन्दक सात्विक सुख सोय॥३७॥

संयोग विषय अरु इन्द्रिन से, अमृत सम प्रथम लखाता है ।
विष सम परिणाम होय जिसका, सो राजस सुख कहलाता है॥३८

जिसका आदी अरु मध्य अन्त, दुखदाई है मोह उपजावे ।
आलस प्रमाद अरु नींद युक्त, सो तमोगुणी सुख कहलावे ॥३६॥

पृथिवी देवन द्यौ आदी में, कोई नहिं अस जीवन वारा ।
जो प्रकृती से प्रगटन वाले, इन तीन गुणों से हो न्यारा ॥४०॥

निज निज स्वभाव से प्रगट हुवे, अर्जुन इन तीन गुणों द्वारा ।
ब्राह्मन क्षत्री अरु वैश्य शूद्र, है जिनका कर्म भेद न्यारा ॥४१॥

शम दम तप क्षान्ति पवित्रता, धीरज अरु क्षमता शील मान ।
विज्ञान ज्ञान अरु आस्तिकता, ब्राह्मण का कर्म स्वभाव जान ॥४२॥

शूरत्व चतुर्ता तेज धैर्य, निर्भय रणकोशल वीर भाव ।
ऐश्वर्य भाव अरु दान पुण्य, है अर्जुन क्षत्रिन का स्वभाव ॥४३॥

व्यापार गऊ रक्षा खेती, वैश्यों का कर्म स्वभाव जान ।
जो कर्म टहल परिचरियां के, शूद्रन का कर्म स्वभाव मान ॥४४॥

निज निज करमों में लगा हुवा, मानुष सिद्धी को पाता है ।
निज निज कर्मों में तत्पर जो, सुन योग्य जिमी बन जाता है॥४५
जिससे भूतों में लगाव है, जिसने सब जगत रचाई है ।
निज कर्मों से जिसने उसको, पूजा तिन सिद्धी पाई है ॥४६॥

अपना गुणहीन धर्म अच्छा, परधर्मों से कहलाता है ।
निज स्वभाव युत जिन कर्म किया, सो पाप भोग नहिं पाता है ॥

अर्जुन निज स्वभाव कर्मों को, हों सदोष तो भी नहिं त्यागे ।
हैं कर्म दोष से युक्त सभी, जैसे अगनी धूँवा भाषे ॥४८॥

मन जीत चाह तृष्णा वश कर, सब में मन नहीं फँसाता है ।
सो परम सिद्धि निष्काम कर्म, संन्यास त्याग से पाता है ॥४६॥

सिद्धि को पा करके योगी, जिमि परम ब्रह्म को पाते हैं ।
जो ऊँची निष्ठा ज्ञानिन की अर्जुन संक्षेप बताते हैं ॥५०॥

जो सद् बुद्धी से मुक्त हुवे, शब्दादि विषों में नहिं लागे ।
धीरज युत आतम नियमन कर अरु राग द्वेष आदि त्यागे॥५१॥

अल्पाहारी एकांत वास, वाणी शरीर मन मारा है ।
नयनो नित ध्यानयोग में हों, बैराग्य आसरा धारा है ॥५२॥

जो काम क्रोध अरु लोभ वेग, मद मोह अभिमान नसाता है ।
ममता विहीन हो शान्त चित्त, सो ब्रह्म भाव को पाता है ॥५३॥

जो लीन ब्रह्म में प्रसन्न चित्त, इच्छा अरु शोक न लाता है ।
समदर्शी सारे भूतों में, सो उत्तम भगती पाता है ॥५४॥

जैसा हूँ जो हूँ तत्वों से, भक्तीयुत मुझको पाता है ।
तत्वों युत ज्ञान मुझे तब ही, मुझ में प्रवेश कर जाता है ॥५५॥

सारे करमों को करता भी, जो शरण हमारी आता है ।
सो मम अच्युत पद अविनाशी, मेरे प्रसाद से पाता है ॥५६॥

मन से मुझ पर सब काम छोड़, जिन मेरा ही आसरा बदा ।
बुद्धी युत हुआ परायण जो, मुझ में मन वाला हुआ सदा ॥५७॥

सो मुझ में लग मम प्रसाद से, सब संकट से छुट जावेगा ।
जो अहंकार से नहीं सुने, तो जल्दी विनाश पावेगा ॥५८॥

अभिमान आसरा जो लेके, नहिं युद्ध करूँ यह आवेगी ।
यह मिथ्या है तेरा निश्चय, परकिरती तुम्हें लगावेगी ॥५६॥